RESEARCH PAPER | ECONOMICS | Volume : 6 | Issue : 7 | July 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

जैनपुराणों में अर्थशास्त्र

KEYWORDS

डॉ. राखी गुप्ता

व्याख्यता अर्थशास्त्र विभाग 1351, संन्तोषसदन वर्कत नगर जयपुर

जैन पुराणो एवं अर्थशास्त्र का महत्व के विषय में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आगबर्न तथा निमकॉफ ने 'भोजन' तथा 'सम्पत्ति' विषयक मानवीय क्रियाओं को आर्थिक संस्थाओं के जन्म का कारण बताया। आदिम युग में भूमि आदि सम्पत्ति पर सामुदायिक अधिकार होता था। शिकारी तथा पशुपालन अर्थव्यवस्था की इस प्रारम्भिकावस्था में लगभग आधे से अधिक मानव जातियों में सामुदायिक स्वामित्व की अर्थव्यवस्था प्रचलित थी किन्तु दूसरी शिकारी तथा पशुपालक जातियों की भूमि स्वामित्व की इकाइयाँ छोटे–छोटे खण्डों में विभक्त थीं। इन अर्थव्यवस्थाओं में 'सम्पत्ति' अधिकार का विकेन्द्रीकरण अत्यधिक मात्रा में होता था। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति अपने भाई की भूमि पर बिना उसकी अनुमति के शिकार नहीं कर सकता था और यदि शिकार किसी मित्र के क्षेत्र में भी हो जाता था तो उस भूमि का स्वामी शिकार के माँस का एक भाग लेने का हकदार था। इन समाजों में भूमि का हस्तान्तरण कुटुम्ब के प्रौढ व्यक्तियों के बिना नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार आदिम युगीन आर्थिक व्यवस्थाएँ अर्द्धविकसित व्यवस्थाएँ रही थीं। यह तो सही है कि एडम स्मिथ अर्थशास्त्र का जनक था और उसी की प्रेरणा से अर्थशास्त्र एक स्वतन्त्र विषय के रूप में विकसित हुआ परन्तु यह सत्य नहीं है कि आर्थिक चिन्तन का प्रारम्भ एडम स्मिथ ने ही किया। इस बात पर विवाद हो सकता है कि आर्थिक चिन्तन का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ था। हमारा मस्तिष्क कल्पना करते–करते एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचकर ठहर जाता है जिसके आगे शून्य–ही–शून्य का आभास होने लगता है, और वह बिन्दु है आदि मानव के जन्म का। ज्योंही आदि मानव ने इस संसार में प्रवेश किया त्योंही उसका जीवन छोटे–मोटे संघर्षों में व्यतीत होने लगा। उसके सामने एक नहीं, अनेक समस्याएँ पैदा होती गयीं। कुछ समस्याओं का समाधान निकला, कुछ का नहीं, और कुछ और नयी समस्याएँ जन्म लेने लगीं।

इस बात पर विवाद नहीं हो सकता कि व्यक्ति की समस्याओं की तुलना में, उनके समाधान के साधन सीमित थे। आज भी यही समस्या व्यक्ति के चारों ओर चक्कर काट रही है प्राचीन काल के मानव ने इन समस्याओं के समाधान के लिए चिन्तन किया था। उसने अपनी जीविका चलाने के लिए साधनों का संग्रह किया और सीमित साधनों को विभिन्न आवश्यकताओं के बीच इस क्रम में बाँटा कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। व्यक्ति की इस कार्यप्रणाली को आर्थिक कार्य–प्रणाली कहा जा सकता है और इसी कार्य–प्रणाली के साथ–साथ आर्थिक चिन्तन का भी प्रारम्भ हुआ था।

कृषि आदि व्यवसायों के अस्तित्व में न आ पाने के कारण पहले पहल मानव समाज धन की व्यक्तिगत भावना से अछूता रहा था किन्तु जैसे–जैसे उत्पादन के क्षेत्र में उन्नति होती गई मनुष्य व्यक्तिगत श्रम के आधार पर व्यक्तिगत धन के प्रति भी सजग होता गया। प्राचीन भारतीय सभ्यता के प्राचीनतम युग वैदिक–युग में ही कृषि उत्पादन, पशु पालन आदि महत्त्वपूर्ण उद्योग अस्तित्व में आ गए थे। इसी युग में व्यक्ति 'धन' के स्वत्व की भावना से भी पूर्णतः अनुप्राणित हो चुका था। इसी प्रकार यत्र–तत्र वेदों में ही दूसरे के धन का लालच न करने का आदेश दिया गया है। वैदिक मंत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि देवताओं से धन, पुत्र, गृह आदि वस्तुओं की याचना की जाती थी।

आदिपुराण में बताया गया है कि आदितीर्थंकर ने अपने पुत्र भरत को अर्थशास्त्र की शिक्षा दी थी। पर इस अर्थशास्त्र का स्वरूप क्या था? इसकी जानकारी आदिपुराण के उक्त सन्दर्भ से नहीं होती। हाँ, आदिपुराण के अध्ययन से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि कल्याण सम्बन्धी समस्त बातों का समावेश अर्थशास्त्र में किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार अर्थशास्त्र का विषय मनुष्य है। मनुष्य किस प्रकार आय प्राप्त करता है और उसे व्यय करके अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस विधि के द्वारा करता हुआ सुख और कल्याण प्राप्त करता है, यह अर्थशास्त्र का अध्ययनीय विषय है। अर्थशास्त्री प्रो. मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के सम्बन्ध में मानव जाति का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यों के उस भाग का अध्ययन करता है जिसका घनिष्ठ सम्बन्ध कल्याण प्रदान करने वाले भौतिक पदार्थों की प्राप्ति तथा उनका उपयोग करने से है।

आदिपुराण में आर्थिक विचारों के अन्तर्गत "अर्थसम्मार्जनं, रक्षणं, वर्द्धनं, पात्रे च विनियोजनम्" – अर्थात् धन कमाना, अर्जित धन का रक्षण करना, पुनः उसका संवर्द्धन करना तथा योग्य पात्रों को दान देना आदि बातों को माना गया है। मनुष्य के आर्थिक आचरण का अध्ययन करना ही आर्थिक विचारों का अध्ययन है। प्रो. उदयप्रकाश श्रीवास्तव के अनुसार अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जिसमें मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं – उत्पादन, उपभोग, विनिमय और वितरण का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह मानव–कल्याण के उस भाग का अध्ययन करता है, जिसे मुद्रा रूपी मापदण्ड से मापा जा सके अर्थात् अर्थशास्त्र में मनुष्य के भौतिक कल्याण का अध्ययन किया जाता है।

आदिपुराण में धनार्जन के साथ विवेक को महत्त्व देते हुए लिखा है "लक्ष्मीवाग्वनिता– समागमसुखस्यैकाधिपत्यं दधत्" अर्थात् सरस्वती और लक्ष्मी का समान रूप से सन्तुलन ही सुख का कारण है। जो व्यक्ति धनार्जन, धनरक्षण और धनसंवर्द्धन करते समय विवेक को खो देता है, वह व्यक्ति संसार में सुखी नहीं हो सकता। इसी सिद्धान्त को विस्तृत करते हुए आदिपुराण में बताया है – "न्यायोपार्जितवित्तकामघटना"अर्थात् न्यायपूर्वक चयन किये हुए धन से ही इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए। मनुष्य को दुर्लभता और अभाव का निरंतर सामना करना पड़ता है। इच्छाएँ अनन्त है और पूर्ति के साधन सीमित अतः समस्त इच्छाओं की पूर्ति तो असम्भव है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो विभिन्न उपयोगों वाले दुर्लभ साधनों तथा उद्देश्यों से सम्बन्ध रखने वाले मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है। सीमित साधनों को विभिन्न आवश्यकताओं पर इस प्रकार व्यय करना चाहिए, जिससे आधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। आवश्यकताओं को पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है –

1. जीवन रक्षक आवश्यकताएँ
2. निपुणता रक्षक आवश्यकताएँ
3. प्रतिष्ठा रक्षक आवश्यकताएँ
4. आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ
5. विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताएँ

आदिपुराण में उपयोगिता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। आवश्यकता की पूर्ति तभी सन्तुष्टि का कारण बन सकती है, जब उसकी उपयोगिता किसी दृष्टि से हो। आवश्यकताएँ भौगोलिक, शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, स्वाभाविक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारणों से हो सकती हैं। आदिपुराण के अनुसार मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति विवेक के साथ करनी चाहिए। उपयोगितावाद को स्पष्ट करते हुए बताया है – "रत्नानि ननु तान्येव यानि यान्त्युपयोगिताम्" मनुष्य न तो नयी वस्तु का निर्माण करता है और न ही किसी वस्तु का विनाश करता है वह तो केवल उपयोगिता का सृजन करता है और उपयोगिता का ही उपभोग करता है इसे ही उत्पादन व उपभोग कहा जाता है। जैसे–जैसे किसी पदार्थ की उपयोगिता बढ़ती जाती है वैसे–वैसे उसका मूल्य भी बढ़ता जाता है। मूल्य निर्धारण उपयोगिता के आधार पर ही किया जाता है। आदिपुराणकार ने रत्नों के उदाहरण से उपयोगितावाद का बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। रत्न तभी रत्नसंज्ञा को प्राप्त होते हैं, जब खान से निकलने के अनन्तर उन्हें सुसंस्कृत कर उपयोगी बना दिया जाता है। यदि रत्नों में संस्कार न किया जाय – उपयोगिता का सृजन न किया जाय तो रत्न रत्न न होकर पाषाण कहलायेंगे। मूलतः आर्थिक क्रियाओं का प्रारम्भ मनुष्य की आवश्यकताओं से होता है, जिनकी पूर्ति अत्यन्त आवश्यक है। इसी कारण आदिपुराण में उपयोगिता को महत्त्व दिया गया है।

धर्मबुद्धि पूर्वक इष्टार्थ की पूर्ति अर्थात् कामनाओं की पूर्ति करनी चाहिए। कामनाओं की पूर्ति अर्थ के द्वारा सम्भव है और अर्थार्जन के लिए श्रम एवं पूंजी का विनिमय

Volume : 6 | Issue : 7 | July 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

करना आवश्यक है। सभी ओर रत्नों की खानों को प्रकट करने वाली वसुन्धरा – पृथ्वी न केवल नाम से वसुन्धरा है किन्तु क्रिया से भी वसुन्धरा अर्थात् वसुम् + ध रा धन को धारण करने वाली है।

"अर्थार्थिभिरकर्त्तव्यं न लोके नाम किंचन" अर्थात् जो उद्योग व्यवसाय या कृषि में लगा हुआ है तथा जिसका एकमात्र उद्देश्य धन कमाना ही है ऐसे व्यक्ति के लिए संसार में कोई भी अकरणीय कार्य नहीं है। जो व्यक्ति उत्पादन में लगा हुआ है वह अपने सभी साधनों का उपयोग पूरी शक्ति के साथ करते हुए धन अर्जित करता है। इससे अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने का संकेत मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि लौकिक दृष्टि से आर्थिक समृद्धि अत्यधिक अपेक्षित है। आदिपुराण में इस समृद्धि को सकलजन उपभोग्य बनाने के लिए अपरिग्रह एवं संयम के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। धर्मवृक्ष का फल अर्थ को ही माना है तथा इच्छाओं की पूर्ति उस फल का रस है।

संदर्भ सूची

1. आचार्य गुणभद्र : 2006, उत्तरपुराण, संपादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, नई–दिल्ली,
2. आचार्य जिनसेन : 2006, आदिपुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, भाग 1 व भाग 2, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,
3. आचार्य जिनसेन द्वितीय : 2006, हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
4. आचार्य रविषेण : 2006, पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, भाग 1, भाग 2 व भाग 3 प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
5. महाकवि असग : 1977, शान्तिनाथ पुराण, सम्पादक – डॉ. हीरालाल जैन, अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर।